कलाकर्म एक विचित्र उन्माद है। इसे विश्वास से सहेजना है–
संपूर्णता से, पहाड़ों के धैर्य के समान, मौन प्रतीक्षा में, अकेले ही।
(आत्मा का ताप)

सैयद हैदर रज़ा

जन्म : सन् 1922, बाबरिया गाँव (म.प्र.)
सम्मान : 'ग्रेड ऑव ऑफ़िसर ऑव द ऑर्डर ऑव आर्ट्स ऐंड लेटर्स'
मृत्यु : सन् 2016 में

रज़ा ने चित्रकला की शिक्षा नागपुर स्कूल ऑफ़ आर्ट व सर जे.जे. स्कूल ऑफ़ आर्ट, मुंबई से प्राप्त की। भारत में अनेक प्रदर्शनियाँ आयोजित करने के बाद सन् 1950 में वे फ्रांसीसी सरकार की छात्रवृत्ति पर फ्रांस गए और अध्ययन किया।

आधुनिक भारतीय चित्रकला को जिन कलाकारों ने नया और आधुनिक मुहावरा दिया, उनमें सैयद हैदर रज़ा का नाम महत्वपूर्ण है। रज़ा सिर्फ़ इसी वजह से कला की दुनिया में सम्मान्य नहीं हैं बल्कि, जिन कलाकारों ने आधुनिक भारतीय कला को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया उनमें हुसैन और सूज़ा के साथ रज़ा का नाम अगली पंक्ति में आता है।

इनमें हुसैन सबसे ज़्यादा घुमक्कड़ रहे, लेकिन उनका केंद्र भारत ही रहा। सूज़ा न्यूयार्क चले गए और रज़ा पेरिस में जाकर बस गए। इस तरह रज़ा की कला में भारतीय और पश्चिमी कला दृष्टियों का मेल हुआ। लंबे समय तक पश्चिम में रहने और वहाँ की कला की बारीकियों से प्रभावित होने के बावजूद रज़ा ठेठ रूप से भारतीय कलाकार हैं। बिंदु उनकी कला-रचना के केंद्र में है। उनकी कई

© NCERT not to be republished

कलाकृतियाँ बिंदु का रूपाकार हैं। यह बिंदु केवल रूपाकार नहीं है, बल्कि पारंपरिक भारतीय चिंतन का केंद्र-बिंदु भी है। यहाँ यह भी गौरतलब है कि बिंदु की तरफ़ उनका झुकाव उनके स्कूली शिक्षक नंदलाल झरिया ने कराया था।

रज़ा की कला और व्यक्तित्व में उदात्तता है। उनकी कला में रंगों की व्यापकता और अध्यात्म की गहराई है। उनकी कला को भारत और दूसरे देशों में काफ़ी सराहा गया है। रुडॉल्फ़ वॉन लेडेन, पियरे गोदिबेयर, गीति सेन, जाक लासें, मिशेल एंबेयर आदि ने रज़ा पर मोनोग्राफ़ लिखे हैं।

यहाँ दिया गया पाठ सैयद हैदर रज़ा की आत्मकथात्मक पुस्तक ***आत्मा का ताप*** *का एक अध्याय है। इसका अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद* ***मधु बी. जोशी*** *ने किया है। यहाँ रज़ा ने चित्रकला के क्षेत्र में अपने आरंभिक संघर्षों और सफलताओं के बारे में बताया है। एक कलाकार का जीवन-संघर्ष और कला-संघर्ष, उसकी सर्जनात्मक बेचैनी, अपनी रचना में सर्वस्व झोंक देने का उसका जुनून—ये सारी चीज़ें इसमें बहुत रोचक व सहज शैली में उभरकर आई हैं।*

© NCERT not to be republished

11066CH10

आत्मा का ताप

नागपुर स्कूल की परीक्षा में मैं कक्षा में प्रथम आया, दस में से नौ विषयों में मुझे विशेष योग्यता प्राप्त हुई। इससे मुझे बड़ी मदद मिली। पिता जी रिटायर हो चुके थे। अब मुझे नौकरी ढूँढ़नी थी। मैं गोंदिया[1] में ड्राइंग का अध्यापक बन गया। महीने-भर में ही मुझे बंबई में 'जे.जे. स्कूल ऑफ़ आर्ट' में अध्ययन के लिए मध्य प्रांत की सरकारी छात्रवृत्ति मिली। यह सितंबर 1943 की बात है। मैंने अमरावती[2] के गवर्नमेंट नॉर्मल स्कूल से त्यागपत्र दे दिया। जब तक मैं बंबई पहुँचा तब तक जे.जे. स्कूल में दाखिला बंद हो चुका था। दाखिला हो भी जाता तो उपस्थिति का प्रतिशत पूरा न हो पाता। छात्रवृत्ति वापस ले ली गई। सरकार ने मुझे अकोला[3] में ड्राइंग अध्यापक की नौकरी देने की पेशकश की। मैंने तय किया कि मैं लौटूँगा नहीं, बंबई में ही अध्ययन करूँगा। मुझे शहर पसंद आया, वातावरण पसंद आया, गैलरियाँ और शहरों में अपने पहले मित्र पसंद आए। और भी अच्छी बात यह हुई कि मुझे एक्सप्रेस ब्लॉक स्टूडियो में डिज़ाइनर की नौकरी मिल गई। यह स्टूडियो फ़ीरोज़शाह मेहता रोड पर था। एक बार फिर कड़ी मेहनत का दौर चला। करीब साल-भर में ही स्टूडियो के मालिक श्री जलील और मैनेजर श्री हुसैन ने मुझे मुख्य डिज़ाइनर बना दिया। सुबह दस बजे से शाम छह बजे तक मैं दफ़्तर में काम करता। फिर मैं अध्ययन के लिए मोहन आर्ट क्लब जाता और फिर जेकब सर्कल जहाँ भाई के परिचित एक टैक्सी ड्राइवर ने मुझे रहने की जगह दे रखी थी। उसने कहा कि मैं तो टैक्सी रात

© NCERT not to be republished

1, 2, 3 – *महाराष्ट्र में स्थित*

को ही चलाता हूँ तो तुम वहाँ सो सकते हो। वह दिन में कमरे पर लौटता। यह छोटा-सा कमरा जेकब सर्कल सात रास्ता में पहली मंज़िल पर था। एक रात जब साढ़े नौ बजे मैं कमरे पर पहुँचा तो हमारे दरवाज़े पर एक पुलिसवाला खड़ा था। उसने कहा कि तुम अंदर नहीं जा सकते, यहाँ हत्या की वारदात हुई है। हमलोग कभी भी राजनीति या किसी भी तरह की संदिग्ध गतिविधियों में शामिल नहीं हुए थे। मेरी तो अक्ल गुम हो गई। मैं तुरंत पुलिस स्टेशन जाकर कमिश्नर से मिला। उन्हें बताया कि मैं एक विद्यार्थी हूँ, जेकब सर्कल में रहता हूँ, मेरे कमरे के बाहर पुलिसवाला खड़ा है और मुझे अंदर नहीं जाने दे रहा है। उन्होंने बताया कि मेरे टैक्सी ड्राइवर मित्र राल्फ़ पर या मुझ पर शक नहीं है। राल्फ़ की टैक्सी में किसी ने एक सवारी की छुरा मारकर हत्या कर दी थी। अगले दिन मैंने जलील साहब को रामकहानी सुनाई तो उन्होंने मुझे आर्ट डिपार्टमेंट में कमरा दे दिया। मैं फ़र्श पर सोता। वे मुझे रात ग्यारह-बारह बजे तक गलियों के चित्र या और तरह-तरह के स्केच बनाते देखते। कभी-कभी वे कहते कि तुम बहुत देर तक काम करते रह गए, अब सो जाओ। कुछ महीने बाद उन्होंने मुझे एक बहुत शानदार ठिकाना देने की पेशकश की—उनके चचेरे भाई के छठी मंज़िल के फ़्लैट का एक कमरा। उसमें दो पलंग पड़े थे। उनकी योजना यह थी कि अगर मैं उनके यहाँ काम करता रहा तो मुझे कला विभाग का प्रमुख बना दिया जाए। मैं जेकब सर्कल का सात रास्ते वाला घर और उसका गलीज़ वातावरण छोड़कर नए ठिकाने पर आ गया और पूरी तरह अपने काम में डूब गया। इसका परिणाम यह हुआ कि चार बरस में, 1948 में, बॉम्बे आर्ट्स सोसाइटी का स्वर्ण पदक मुझे मिला। इस सम्मान को पाने वाला मैं सबसे कम आयु का कलाकार था। दो बरस बाद मुझे फ्रांस सरकार की छात्रवृत्ति मिल गई। मैंने खुद को याद दिलाया: भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं। मेरे पहले दो चित्र नवंबर 1943 में आर्ट्स सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की प्रदर्शनी में प्रदर्शित हुए। उद्घाटन में मुझे आमंत्रित नहीं किया गया, क्योंकि मैं जाना-माना नाम नहीं था। अगले दिन मैंने 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' में प्रदर्शनी की समीक्षा पढ़ी। कला-समीक्षक

© NCERT not to be republished

रुडॉल्फ़ वॉन लेडेन ने मेरे चित्रों की काफ़ी तारीफ़ की थी। उसका पहला वाक्य मुझे आज भी याद है, ''इनमें से कई चित्र पहले भी प्रदर्शित हो चुके हैं, और नयों में कोई नई प्रतिभा नहीं दिखी। हाँ, एस.एच. रज़ा के नाम के छात्र के एक-दो जलरंग लुभावने हैं। उनमें संयोजन और रंगों के दक्ष प्रयोग की ज़बरदस्त समझदारी दिखती है।'' दोनों चित्र 40-40 रुपये में बिक गए। एक्सप्रेस ब्लॉक स्टूडियोज़ में आठ-दस घंटा रोज़ काम करने के बाद भी महीने-भर में मुझे इतने रुपये नहीं मिल पाते थे। वेनिस अकादमी के प्रोफ़ेसर वाल्टर लैंगहैमर से भेंट हुई तो उन्होंने जर्मन उच्चारणवाली अंग्रेज़ी में कहा, ''आई लफ्ड यूअर स्टॅफ़, मिस्टर रत्ज़ा'' (रज़ा साहब, मुझे आपका काम पसंद आया)। रुडॉल्फ़ वॉन लेडेन भी कृपा बनाए रखते थे। इसके बाद वियना के एक कला-संग्राहक एम्मेनुएल श्लैसिंगर मेरे काम के प्रशंसक बने, यह मेरी बहुमूल्य उपलब्धि थी। समय के साथ-साथ चीज़ें होती चली गईं। प्रोफ़ेसर लैंगहैमर ने काम करने के लिए अपना स्टूडियो दे दिया। वे 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' में आर्ट डायरेक्टर थे। मैं दिन में उनके स्टूडियो में चित्र बनाता, शाम को चित्र उन्हें दिखाता तो वे बारीकी से उनका विश्लेषण करते। मेरे काम में उनकी रुचि बढ़ती गई। मेरा काम निखरता गया। वे मेरे चित्र खरीदने लगे और आखिर मेरे लिए नौकरी छोड़कर कला के अध्ययन में जुट पाना संभव हो सका। 1947 में मैं जे.जे. स्कूल ऑफ़ आर्ट का नियमित छात्र बन गया, क्योंकि अब मैं नौकरी किए बिना भी अपनी फ़ीस और रहने का खर्चा उठा सकता था।

भले ही 1947 और 1948 में महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी हों, मेरे लिए वे कठिन बरस थे। पहले तो कल्याण वाले घर में मेरे पास रहते मेरी माँ का देहांत हो गया। पिता जी मेरे पास ही थे। वे मंडला लौट गए। मई 1948 में वे भी नहीं रहे। विभाजन की त्रासदी के बावजूद भारत स्वतंत्र था। उत्साह था, उदासी भी थी। जीवन पर अचानक ज़िम्मेदारियों का बोझ आ पड़ा। हम युवा थे। मैं पच्चीस बरस का था, लेखकों, कवियों, चित्रकारों की संगत थी। हमें लगता था कि हम पहाड़ हिला सकते हैं। और सभी अपने-अपने क्षेत्रों में, अपने माध्यम में सामर्थ्य भर-बढ़िया काम करने

© NCERT not to be republished

में जुट गए। देश का विभाजन, महात्मा गांधी की हत्या क्रूर घटनाएँ थीं। व्यक्तिगत स्तर पर, मेरे माता-पिता की मृत्यु भी ऐसी ही क्रूर घटना थी। हमें इन क्रूर अनुभवों को आत्मसात करना था। हम उससे उबर काम में जुट गए।

1948 में मैं श्रीनगर गया, वहाँ चित्र बनाए। ख्वाज़ा अहमद अब्बास भी वहीं थे। कश्मीर पर कबायली* आक्रमण हुआ, तब तक मैंने तय कर लिया था कि भारत में ही रहूँगा। मैं श्रीनगर से आगे बारामूला तक गया। घुसपैठियों ने बारामूला को ध्वस्त कर दिया था। मेरे पास कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला का पत्र था, जिसमें कहा गया था कि यह एक भारतीय कलाकार हैं, इन्हें जहाँ चाहे वहाँ जाने दिया जाए और इनकी हर संभव सहायता की जाए। एक बार मैं बस से बारामूला से लौट रहा था या वहाँ जा रहा था तो स्थानीय कश्मीरियों के बीच मुझ पैंटधारी शहराती को देखकर एक पुलिसवाले ने मुझे बस से उतार लिया। मैं उसके साथ चल दिया। उसने पूछा, "कहाँ से आए हो? नाम क्या है?" मैंने बता दिया कि मैं रज़ा हूँ, बंबई से आया हूँ। शेख साहब की चिट्ठी उसे दिखाई। उसने सलाम ठोंका और परेशानी के लिए माफ़ी माँगता हुआ चला गया।

श्रीनगर की इसी यात्रा में मेरी भेंट प्रख्यात फ्रेंच फोटोग्राफ़र हेनरी कार्तिए-ब्रेसाँ से हुई। मेरे चित्र देखने के बाद उन्होंने जो टिप्पणी की वह मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। उन्होंने कहा "तुम प्रतिभाशाली हो, लेकिन प्रतिभाशाली युवा चित्रकारों को लेकर मैं संदेहशील हूँ। तुम्हारे चित्रों में रंग है, भावना है, लेकिन रचना नहीं है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि चित्र इमारत की ही तरह बनाया जाता है–आधार, नींव, दीवारें, बीम, छत और तब जाकर वह टिकता है। मैं कहूँगा कि तुम सेज़ाँ का काम ध्यान से देखो।" इन टिप्पणियों का मुझ पर गहरा प्रभाव रहा। बंबई लौटकर मैंने फ्रेंच सीखने के लिए अलयांस फ्रांसे में दाखिला ले लिया। फ्रेंच पेंटिंग में मेरी खासी रुचि थी, लेकिन मैं समझना चाहता था कि चित्र में रचना या बनावट वास्तव में क्या होगी।

* *कबीलों का आक्रमण*

© NCERT not to be republished

रज़ा अपने स्टूडियो में, पेरिस

1950 में एक गंभीर वार्तालाप के दौरान फ्रें च दूतावास के सांस्कृतिक सचिव ने मुझसे पूछा, "तुम फ्रांस जाकर कला का अध्ययन क्यों करना चाहते हो?" मैंने पूरे आत्मविश्वास से उत्तर दिया, "फ्रेंच कलाकारों का चित्रण पर अधिकार है। फ्रेंच पेंटिंग मुझे अच्छी लगती है।" "तुम्हारे पसंदीदा कलाकार?" "सेज़ाँ, वॉन गॉग, गोगाँ पिकासो, मातीस, शागाल और ब्रॉक।" "पिकासो के काम के बारे में तुम्हारा क्या विचार है?" मैंने कहा "पिकासो का हर दौर महत्वपूर्ण है, क्योंकि पिकासो जीनियस है।" वह इतने खुश हुए कि मुझे एक के बजाय दो बरस के लिए छात्रवृत्ति मिली। मैं सितंबर में फ्रांस के लिए निकला और 2 अक्टूबर 1950 को मार्सेई पहुँचा। यूँ पेरिस में मेरा जीवन प्रारंभ हुआ। बंबई में रहते एक ऊर्जा थी, काम करने की एक इच्छा थी। आत्मा को चढ़ा यह ताप लोगों को दिखाई देता था। अपने यहाँ ज़बरदस्त उदारता थी। कोई काम करने का इच्छुक हो तो लोग सहायता को तैयार रहते थे।

मैं अपने कुटुंब के युवा लोगों से कहता रहता हूँ कि तुम्हें सब कुछ मिल सकता है बस, तुम्हें मेहनत करनी होगी। चित्रकला व्यवसाय नहीं, अंतरात्मा की पुकार है। इसे अपना सर्वस्व देकर ही कुछ ठोस परिणाम मिल पाते हैं। केवल ज़हरा जाफ़री को कार्य करने की ऐसी लगन मिली। वह पूरे समर्पण से दमोह शहर के आसपास के ग्रामीणों के साथ काम करती हैं। कल मैंने उन्हें फ़ोन किया—यह जानने के लिए कि वह दमोह में क्या कर रही हैं। उन्हें बड़ी खुशी हुई कि मुझे सूर्यप्रकाश (उस ग्रामीण

© NCERT not to be republished

स्त्री का पति, जो अपने पति का नाम नहीं ले रही थी) का किस्सा याद है। मैंने धृष्टता से उन्हें बताया कि 'बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख।' मेरे मन में शायद युवा मित्रों को यह संदेश देने की कामना है कि कुछ घटने के इंतजार में हाथ पर हाथ धरे न बैठे रहो—खुद कुछ करो। ज़रा देखिए, अच्छे-खासे संपन्न परिवारों के बच्चे काम नहीं कर रहे, जबकि उनमें तमाम संभावनाएँ हैं। और यहाँ हम बेचैनी से भरे, काम किए जाते हैं। मैं बुखार से छटपटाता-सा, अपनी आत्मा, अपने चित्त को संतप्त किए रहता हूँ। मैं कुछ ऐसी बात कर रहा हूँ, जिसमें खामी लगती है। यह बहुत गज़ब की बात नहीं है, लेकिन मुझमें काम करने का संकल्प है। भगवद् गीता कहती है, ''जीवन में जो कुछ भी है, तनाव के कारण है।'' बचपन, जीवन का पहला चरण, एक जागृति है। लेकिन मेरे जीवन का बंबईवाला दौर भी जागृति का चरण ही था। कई निजी मसले थे, जिन्हें सुलझाना था। मुझे आजीविका कमानी थी। मैं कहूँगा कि पैसा कमाना महत्वपूर्ण होता है, वैसे अंततः वह महत्वपूर्ण नहीं ही होता। उत्तरदायित्व होते हैं, किराया देना होता है, फ़ीस देनी होती है, अध्ययन करना होता है, काम करना होता है। कुल मिलाकर स्थिति खासी जटिल थी। मेरे माता-पिता के न रहने और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को खो देने से जटिलता और बढ़ी।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

पाठ के साथ

1. रज़ा ने अकोला में ड्राइंग अध्यापक की नौकरी की पेशकश क्यों नहीं स्वीकार की?
2. बंबई में रहकर कला के अध्ययन के लिए रज़ा ने क्या-क्या संघर्ष किए
3. ***भले ही 1947 और 1948 में महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी हों, मेरे लिए वे कठिन बरस थे***— रज़ा ने ऐसा क्यों कहा?
4. रज़ा के पसंदीदा फ्रेंच कलाकार कौन थे?
5. ***तुम्हारे चित्रों में रंग है, भावना है, लेकिन रचना नहीं है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि चित्र***

इमारत की ही तरह बनाया जाता है– आधार, नींव, दीवारें, बीम, छत; और तब जाकर वह टिकता है– यह बात

क. किसने, किस संदर्भ में कही?

ख. रज़ा पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?

पाठ के आस-पास

1. रज़ा को जलील साहब जैसे लोगों का सहारा न मिला होता तो क्या तब भी वे एक जाने-माने चित्रकार होते? तर्क सहित लिखिए।
2. ***चित्रकला व्यवसाय नहीं, अंतरात्मा की पुकार है***– इस कथन के आलोक में कला के वर्तमान और भविष्य पर विचार कीजिए।
3. ***हमें लगता था कि हम पहाड़ हिला सकते हैं***– आप किन क्षणों में ऐसा सोचते हैं?
4. राजा रवि वर्मा, मकबूल फ़िदा हुसैन, अमृता शेरगिल के प्रसिद्ध चित्रों का एक अलबम बनाइए।

भाषा की बात

1. ***जब तक मैं बंबई पहुँचा, तब तक जे.जे. स्कूल में दाखिला बंद हो चुका था***– इस वाक्य को हम दूसरे तरीके से भी कह सकते हैं। ***मेरे बंबई पहुँचने से पहले जे.जे. स्कूल में दाखिला बंद हो चुका था।*** नीचे दिए गए वाक्यों को दूसरे तरीके से लिखिए–

   (क) जब तक मैं प्लेटफ़ॉर्म पहुँचती तब तक गाड़ी जा चुकी थी।

   (ख) जब तक डॉक्टर हवेली पहुँचता तब तक सेठ जी की मृत्यु हो चुकी थी।

   (ग) जब तक रोहित दरवाज़ा बंद करता तब तक उसके साथी होली का रंग लेकर अंदर आ चुके थे।

   (घ) जब तक रुचि कैनवास हटाती तब तक बारिश शुरू हो चुकी थी।

2. ***आत्मा का ताप*** पाठ में कई शब्द ऐसे आए हैं जिनमें ***ऑ*** का इस्तेमाल हुआ है, जैसे– *ऑफ ब्लॉक, नॉर्मल।* नीचे दिए गए शब्दों में यदि *ऑ* का इस्तेमाल किया जाए तो शब्द के अर्थ में क्या परिवर्तन आएगा? दोनों शब्दों का वाक्य-प्रयोग करते हुए अर्थ के अंतर को स्पष्ट कीजिए–

   हाल, काफ़ी, बाल

© NCERT not to be republished